International Journal of Engineering, Management, Humanities and Social Sciences Paradigms (IJEMHS)
Volume 35, Issue 03 and Publication Date: 1st May, 2023
An Indexed, Referred and Peer Reviewed Journal
ISSN (Online): 2347-601X
www.ijemhs.com

# आचार्य शुक्र का व्यक्तित्व एवं उनकी रचनाओं में नैतिकता का महत्तव

हर्षवद्धन सिंह
शोध छात्र, इतिहास विभाग, बी. एन. एम. यू., मधेपुरा, बिहार

---

## सार

भारत प्राचीन काल से ही सम्पूर्ण विश्व का एक महान् देश रहा है तथा मानव सभ्यता का प्रकाश पूँज बनकर समग्र विश्व को आलोकित किया है। मानव विद्या से सभी क्षेत्र चाहे–वह धर्म, विचार, साहित्य हो अथवा इतिहास, भूगोल अथवा अर्थशास्त्र इत्यादि सभी क्षेत्रों में सम्पूर्ण विश्व भारत का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ट्टणी रहा है। यद्यपि सदियों की गुलामी एवं दासता की बेड़ियों ने न केवल भारत का सम्पूर्ण महत्व समाप्त किया वरन् देश की ज्ञान चिन्तन, कला संस्कृति, साहित्य विज्ञान दर्शन आदि को संसार में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने से भी वंचित रखा। अर्थशास्त्र ही नहीं वरन् ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में भारत के अतीत को पूर्णतः उज्जवलित होने से भी रोका। इसके बावजूद भी यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि भारत का अतीत का ज्ञान विज्ञान संसार में बेमिशाल था। दर्शन, न्याय, गणित ज्योतिष, चिकित्सा, ललितकला, लघु एवं कुटिर उद्योग इत्यादि चर्मोत्कर्ष पर स्थापित होकर अपनी दिव्य आभा से सम्पूर्ण संसार को चकाचौन्ध करने की अवस्था में था। यहाँ के बने वस्त्र मिश्र और रोम के नागरिकों की श्रृंगार कामना की पूर्ति करते थे। ऊनी वस्त्र, बर्त्तन, धातु की वस्तुएँ, औजार, नमक, मशाले, आभूषण इत्यादि की आपूर्ति के द्वारा पश्चात् देशों यथा इंगलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस एवं कई यूरोपीय देशों पर अपना अधिपत्य कायम किये हुए था। यों तो हमारी आर्थिक व्यवस्था काफी सुदृढ़ एवं सवल थी, परन्तु दुर्भाग्यवश विदेशी शासक हमें मात्र गुलामी की जंजीर ही नहीं पहनाये वरन् हमारे विकास और समृद्धि के सारे द्वार भी बन्द कर दिये। परिणाम स्वरूप हमारे आर्थिक विकास के इतिहास के पन्नों की चमक ही विनिष्ट हो गयी। सौभाग्य से आज हमारी दासता और गुलामी का कलंक तो दूर हो गया है जिस कारण आज हमें अतीत के गौरव एवं आर्थिक विचारों के

अवलोकन, विश्लेषण एवं पुनर्व्यवस्था के द्वारा उसे पुनः स्थापित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

## विस्तार

इतिहास इस बात की साक्षी है कि प्रत्येक देश के पास अपनी प्राचीन विरासत व्यवस्थाएँ होती है, इन्हीं व्यवस्थाओं के द्वारा कोई देश अपने इतिहास एवं अतीत को प्रतिबिम्बित एवं महिमामंडित करते हुए आधुनिक व्यवस्था को आधार प्रदान कर भविष्यकालीन व्यवस्था का मर्ग प्रशस्त करते है। जो राष्ट्र अपने विरासत एवं धरोहर की उपेक्षा कर विकास के लिए अन्धाधुन्ध विदेशी मॉडलों का प्रयोग कर रहे हैं, वे निरन्तर आर्थिक असमानता की गहरें कुँए में गिरते जा रहे है। भारत जिसे स्वतंत्र हुए इतने वर्षो हो गया है, वे आज भी विदेशी विकास मॉडलों की मृगमरीचिका के पीछे विवेकहीन ढ़ंग से बेतहासा भाग रहे है। जिस कारण आज भी हमारा देश विकसित देश की श्रेणी में न आकर मात्र विकासशील बना हुआ है। इसकी दयनीय अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख कारण अपनी परम्परागत व्यवस्थाओं की उपेक्षा करना हे। इसमें संदेह नहीं कि आज भी हम अपनी प्राचीन विरासती व्यवस्था प्राचीन अर्थव्यवस्था को परिवर्तित कर आधुनिक अर्थव्यवस्था में समायोजित करें तो हमारा देश भारत भी विकसित राष्ट्रों की कतार में खड़ा हो सकता है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। जैसा समाज होगा, उसी तरह उसकी गतिविधि उसके साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है। समाज के रूप–रंग, बुद्धि–"ह्रास, उत्थान–पतन, समृद्धि, दुःस्थिति के निश्चित ज्ञान का प्रधन साधन तत्कालीन साहित्य होता है। इसी तरह सामाजिक रीति, नीति और संस्कृति के माध्यम से अपनी मधुर झाँकी सदा दिखलाया करती है। संस्कृति के उचित प्रसार, नीति का समतुल प्रचार, रीति के व्यापक स्वरूप का साधन साहित्य ही होता है। नैतिकता का मूल स्तर यदि भौतिकवाद के उफपर आश्रित रहता है तो वहाँ का साहित्य कदापि आध्यात्मिक नहीं हो सकता। किन्तु यदि नैतिकता के भीतर मानवता की भव्य भावनाएँ हिलोरें मारती रहती हैं तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी नैतिकता

की पृष्ठभूमि से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रहा सकता। नीतिशास्त्र से सम्बध साहित्य सामाजिक भावना तथा नैतिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का दर्पण है तो नैतिक आचार तथा मानवीय विचार के विपुल प्रचारक तथा प्रसारक होने हेतु नैतिक ताप के संदेश को जनता के हृदय तक पहुँचाने का वाहन होता है।

'शुक्रनीति' पूर्वोक्त सिद्धान्त का पूर्ण समर्थक है। शुक्रनीति भारतीय समाज के भव्य विचारों का रूचिर दर्पण है। भारतवर्ष में नैतिक जीवन के उपकरणों का सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन–संग्राम के विकट संघर्ष से विमुख न होकर मानव–जीवन की सार्थक उपलब्धि को अपना लक्ष्य मानता है।

संस्कृत–साहित्य में नीति–वर्णनपरक विशेष ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। 'शुक्रनीति' भी उनमें से एक है, जिनमें सूत्रात्मक पद्धति से जीवन को सुखमय तथा लाभप्रद बनाने के लिए उपोगी विषयों का वर्णन किया गया है। शुक्रनीति की अपनी एक विशिष्ट किन्तु सुबोध शैली है। प्रायः सम्पूर्ण ग्रंथ में अनुष्ठप् वृत्तों का प्राधन्य है। इनमें स्वाभाविकता एवं सरलता इतनी है कि ये यथाशीघ्र पाठक या श्रोताओं के हृदय तक पहुँचकर अपना प्रभाव जमाने में समर्थ होते हैं। शुक्रनीति के वास्तविक रचयिता के विषय में हमारा ज्ञान अधूरा है, विवादास्पद है, फिर भी इसका संबंध शुक्राचार्य से इतनी घनिष्ठता के साथ जुड़ा है कि इन श्लोकों को हम 'शुक्रनीति' के नाम से स्वभावतः पुकारते हैं। इसका मुख्य कारण आचार्य शुक्र का एक महनीय राजनीतिवेत्ता होना है। फलतः इनके व्यवहार सम्बन्धी श्लोकों के संग में राजनीति सम्बन्धी श्लोकों का सद्भाव मिलता है। शुक्रनीति के अनेक श्लोक मनुस्मृति में, महाभारत में तथा पुराणों में भी उपलब्ध होते हैं। इस विषय का विस्तृत अनुशीलन अंग्रज विद्वान् डॉ0 लुडविक अस्टर्नवाल ने अनेक ग्रंथों तथा निबन्धों में प्रस्तुत किया है।

संहिताकाल से ही विद्या की संख्या में अनेक मत–मतान्तर प्रचलित रहे हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति में चौदह विद्याओं का उल्लेख है। उनके क्रमशः नाम इस प्रकार हैं–

पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्रा, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दस्, निरूक्त, ज्योतिष, ट्टक्, यजुः, साम तथा अथर्व वेद (द्रष्टव्य–या0 स्मृ0 2/3) मनु ने भी इतनी ही विद्याएँ मानी हैं। विष्णुपुराण में आयुर्वेद, धनुर्वेद, संगीतशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के साथ अठारह विद्याओं को मान्यता दी गई है। छान्दोग्योपनिषद् में संक्षेप्तः उन्नीस विद्याओं का उल्लेख है, परन्तु इन सबसे भिन्न शुक्रनीति में बत्तीस विद्याओं का निर्देश किया गया है (द्रष्टव्य– शु0 नी0 4/267 से 305)। कौटिल्य केवल चार विद्याओं को मानते हैं– आन्वीक्षिकी, त्रायी, विद्या तथा चौथी दण्डनीति। परन्तु शुक्राचार्य के अनुसार एक ही विद्या है और वह है – दण्डनीति। 'दण्डनीतिरेका विद्या इत्यौशनसा तस्यां हि सर्व विद्यारम्भाः प्रतिबद्ध' (अर्थशास्त्र पृ0 10) इनके कहने का तात्पर्य यह है कि दण्डनीति की प्रधानता है। दण्डनीति अपने–आप में पूर्ण है, जब कि अन्य विद्याएँ आंशिक हैं (द्रष्टव्य–शु0 नी0 1/4–5)। यही कारण है कि चार विद्याओं के समर्थक कौटिल्य ने भी इसे सर्वोच्च स्थान दिया है। छान्दोग्य उपनिषद् में उपयुक्त एकायन शब्द की व्याख्या आचार्य शंकर ने नीतिशास्त्र मानकर की है। नीतिविद्या सभी विद्याओं में श्रेष्ठ है। महाभारत, स्मृति और अन्य पुराणों में नीतिविद्या की अनेकशः प्रशंसा की गई है। इससे इतना तो निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि परंपरागत भारतीय चिन्तकों ने नीतिविद्या की मानव–जीवन में विशिष्ट महत्ता स्वीकार की है। नैतिकता ही जीवन है, अनैतिक जीवन घृण्य है। नीतिपरक अनुचिंतन का प्रतिफल यही नीति है। मानवता की पृष्ठभूमि नैतिकता ही है। इसके बिना वेद, आगम, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र या अन्य किसी भी शास्त्रों का ज्ञान अधूरा है। इसलिए इस नीति की मानव–जीवन में इतनी अधिक महत्ता स्वीकार की गई है।

नीतिहीन अनैतिक जीवन मृत्यु से बदतर है। जीवन को केवल वे ही उपलब्ध होते हैं जो स्वयं के और सबके लिए इस नैतिकता के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। इसके अभाव में मनुष्य केवल शरीर मात्र है, जीवन नहीं और शरीर तो जड़ है, जीवन नहीं। आज सर्वत्र आतंकवाद, उग्रवाद और भौतिकता का प्रभुत्व इसी नैतिकता के अभाव का परिणाम है। इस नैतिक जीवन की अनादि अनन्त धरा से जिसका परिचय नहीं है, वह मिथ्या भ्रम में ही अनैतिक कर्म में सुख की खोज

करता है। शरीर के अतिरिक्त और शरीर को अतिक्रमण करता हुआ अपने भीतर जो इस नैतिक जीवन का अनुभव नहीं कर पाते हैं, उनके जीवन पशु–जीवन से उपर नहीं उठ पाते। शारीरिक मिट्टी के घेरे से उपर उठकर जब व्यक्ति अपने कर्म में नैतिकता की ज्योति का अनुभव करते हैं तब वे सच्चे अर्थ में मनुष्य बन जाते हैं।

नीतिशास्त्र चाहे शुक्र का हो या देवगुरू बृहस्पति का अथवा मानवीय कर्म का विवेचक कूटनीतिज्ञ कौटिल्य का सबका सार एक ही है, सबका रहस्य एक ही है। सबके प्रति आत्मवत् प्रीति ही नीति है, इससे भिन्न जो कुछ है वह अनीति है। इस पवित्र प्रीति की नीति में जो जितना अधिक प्रविष्ट होता है, उसका जीवन उतना ही अधिक नैतिक होता है। प्राणी के प्रति प्राणी का पवित्र प्रेम ही नीतिशास्त्र का नैतिक जीवन का मूलाधार है।

नीति शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ 'पाना' होता है यानि जीवन पाना और जीवन को वही उपलब्ध करता है जो नीतिवान् है। 'प्राणी् प्राणे' धातु से क्तिन् प्रत्यय लगा कर नीति शब्द का निर्माण होता है, किन्तु पाना एक समर्थक क्रिया है। अतः इसक अर्थ की पूर्णता के लिए कर्ता, कर्म, अपादान तथा क्रिया का समाहार आवश्यक है। दूसरी बात यह भी है कि प्राण एक प्रेरणार्थक क्रिया है। अतः इसके निश्चित रूप से दो कर्म होंगे। एक तो प्रयोगकर्ता और दूसरा सहयोगी। तात्पर्य यह होगा कि नीति एक आचारनिष्ठ व्यक्ति से प्रेरित वह शब्द है जो सैदव जीवन को उधर्वगामी बनाता है। इसीलिए कहा गया है– 'नयनात् नीतिरूच्यते।' शुक्र ने प्रथम अध्याय के श्लोक संख्या 56 में इसका विवेचन प्रस्तुत किया है। नीति विद्या के अद्वितीय परिष्कारण भीष्म का कहना है कि चारों वर्णों के धर्म में जब कभी विप्लव होता है, जब कभी अनाचार, अनीति का बोलबाता होता है, उसका प्रतिरोध राजा का कर्तव्य बन जाता है।

''चातुर्वर्ण्यस्य धर्माश्च रक्षित्व्या महीक्षिता।
धर्म–संकर–रक्षा च राज्ञां धर्मः सनातन्ः।।''
म0 भा0 शा0 प0 56/15)

राजनीतिप्रकाश में उद्धृत मत्स्यपुराण के अध्ययन से इन नीति शब्द का अर्थ और भी स्पष्ट हो जाता है –

''स्व धर्म प्रच्युतां राजा स्वे स्वे धर्मे नियोजयेत्।''

महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी इस विचार की सम्पुष्टि की है। गीता में श्रीकृष्ण ने भी 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' कहकर प्रकारान्तर से इसी मत का संपोषण किया है। अतः यह स्पष्ट है कि नीतिवान् व्यक्ति का ही जीवन जीवन है अन्यथा नीतिहीन जीवन पशु से भी बदतर है। 'नीति' इस एक शब्द में वह सब अणु छिपा है जो मनुष्य को पशु से भिन्न करता है। लेकिन इसमें शर्त इतनी ही है कि नैतिक जीवन तभी उपलब्ध होता है जब उसके भीतर आत्मानुभूति हो। क्योंकि नीति को उपर से आरोपित नहीं किया जा सकता। यह कोई वस्त्र नहीं है जिसे हम उपर से ओढ़ सके। यह हमारे आचरण की आत्मा है। इसका तो आरोपण नहीं, अपने आप सहज स्पुरण है। नैतिक जीवन एक चेतनावस्था है। नैतिकता कर्म नहीं है, यह तो मनुष्य का स्वभाव है। इसे पाना ही दिव्य जीवन का आधार है। इसके साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो सहज स्पुरित नीति रूप स्वभाव के आभाव में नैतिक जीवन होता है, वह सत्य नहीं है, क्योंकि ऐसे नैतिक जीवन का आधार किसी–न–किसी रूप में भय अथवा प्रलोभन ही होता है। फिर चाहे ऐसा भय या प्रलोभन लौकिक हो या पारलौकिक, कोई फर्क नहीं पड़ता। स्वर्ग के प्रलोभन या नर्क के डर से यदि कोई नैतिक बना है तो वह न तो नैतिक है और न पवित्र ही। ऐसा किसी सौदे में हो सकता है, सत्य में नहीं। नैतिक जीवन का आधार सत्यनिष्ठ है। अतः शास्त्रकारों ने यह निर्णय लिया है कि यदि व्यक्ति स्वयं नीतिनिष्ठ नहीं है तो इसका दायित्व राष्ट्रीय है। राष्ट्रनेता, जो प्राचीन काल में राजा कहलाता था, का यह कर्त्तव्य है कि जन समूह का विचार नैतिक क्यों नहीं है?

असुराचार्य, भृगु श्रृषि तथा दिव्य के पुत्र जो शुक्राचार्य के नाम से अधिक विख्यात हैं। इनका जन्म का नाम शुक्र 'शनस' है। पुराणों के अनुसार यह असुरों (दैत्य, दानव और राक्षस) के गुरु तथा पुरोहित थे। कहते हैं, भगवान के वामनावतार में तीन पग भूमि प्राप्त करने के समय, यह राजा बलि की झारी (सुराही) के मुख में जाकर बैठ गए थे और वामनावतार द्वारा दर्भाग्र (कुशा) से सुराही को साफ करने की क्रिया में इनकी एक आँख फूट गई थी। इसीलिए यह 'एकाक्ष' भी कहे जाते थे। आरंभ में इन्होंने अंगिरस श्रृषि का शिष्यत्व ग्रहण किया किंतु जब वह अपने पुत्र के प्रति पक्षपात दिखाने लगे तब इन्होंने शंकर की आराधना कर भगवान शंकर से मृत संजीवनी विद्या प्राप्त की जिसके प्रयोग से उन्हें युद्व में मृत्यु होने पर मृत योद्धाओं को पुनः जीवित करने की शक्ति प्राप्त थी। इसी कारण देवासुर संग्राम में असुर अनेक बार जीते। इन्होंने एक हजार अध्यायों वाले

'बार्हस्पत्य शास्त्र' की रचना की। 'गो' और 'जयन्ती' नाम की इनकी दो पत्नियाँ थीं। असुरों के आचार्य होने के कारण ही इन्हें 'असुराचार्य' या शुक्राचार्य कहते हैं।

एक पौराणिक कथा के अनुसार महर्षि शुक्राचार्य ने भगवान शिव की घोर तपस्या की थी और उनसे मृतसंजीवनी मंत्र प्राप्त किया था, जिस मंत्र का प्रयोग उन्होंने देवासुर संग्राम में देवताओं के विरुद्ध किया था जब असुर देवताओं द्वारा मारे जाते थे, तब शुक्राचार्य उन्हें मृतसंजीवनी विद्या का प्रयोग करके जीवित कर देते थे। यह विद्या अति गोपनीय ओर कष्टप्रद साधनाओं से सिद्व होती है। उनकी असली समाधी बेट को पर गाव में है। और उसे देखने के लिये लोग आते है।

## संदर्भ

1. : शुक्रनीति सार

2. : डॉ0 तिलक नारायण हजेजा : आर्थिक विचारों का इतिहास
3. : डॉ0 बी0सी0 सिन्हा एवं जी0 सी0 सिंघई : आर्थिक विचारों का इतिहास
4. : डॉ0 रत्न महामहोपाध्याय डॉ0 पाण्डुरंग वामनकाणे : धर्मशास्त्र का इतिहास पाँचो भाग
5. : डॉ0 मिश्रा एवं पुरी : भारतीय अर्थव्यवस्था
6. : डॉ0 सत्यप्रकाश : वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा